

दिल्ली उच्च न्यायालय : नई दिल्ली

रि.या.(सि.) 5226/2008

निर्णय तिथि: 21 अगस्त, 2008

सेंट स्टीफन कॉलेज

..... याचिकाकर्ता

इसके प्रतिनिधि उच्चतम परिषद द्वारा

द्वारा: श्री रोमी चाको सह श्री अर्पित गुप्ता, श्री
सुनील टी. मैथ्यूज और श्री रजत जोसेफ,
अधिवक्तागण

बनाम

दिल्ली विश्वविद्यालय व अन्य

..... प्रत्यर्थीगण

द्वारा: प्र-1 हेतु सुश्री मनिंदर आचार्य सह श्री
विकास सेठी, प्र-2 हेतु श्री अमितेश कुमार,
अधिवक्ता।

कोरम:

माननीय मुख्य न्यायाधीश

माननीय न्यायमूर्ति डॉ. एस. मुरलीधर

1. क्या स्थानीय समाचार पत्र के संवाददाताओं को निर्णय देखने की अनुमति दी जा सकती है? हाँ
2. रिपोर्टर को संदर्भित किया जाना है या नहीं? हाँ
3. क्या निर्णय डाइजेस्ट में प्रकाशित किया जाना चाहिए? हाँ

मुख्य न्यायाधीश अजीत प्रकाश शाह

नियम।

2. प्रत्यर्थी सं. 1 और 2 के विद्वान अधिवक्ता ने नोटिस की तामील से छूट दे दी है। सहमति से याचिका को अंतिम सुनवाई के लिए ले लिया गया है।
3. हमारे विचारणीय लघु प्रश्न यह है कि क्या अल्पसंख्यक कॉलेज का प्रबंधन किसी भी योग्य व्यक्ति को कॉलेज के प्रिंसिपल के रूप में चुनने और नियुक्त करने के लिए स्वतंत्र है या क्या ऐसा करने में ऐसा प्रबंधन विश्वविद्यालय के किसी अध्यादेश द्वारा संरक्षित है? यह विवाद इसलिए पैदा हुआ है क्योंकि दिल्ली विश्वविद्यालय इस बात पर जोर दे रहा है कि याचिकाकर्ता कॉलेज प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII के खंड 7 में निर्दिष्ट चयन समिति की प्रक्रिया का पालन करेगा।
4. याचिकाकर्ता सेंट स्टीफंस कॉलेज एक सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान है जो धार्मिक अल्पसंख्यक ईसाइयों द्वारा स्थापित और प्रशासित है। कॉलेज की स्थापना वर्ष 1881 में हुई थी और इसने आज तक अपना ईसाई चरित्र बरकरार रखा है। कॉलेज का प्रबंधन सर्वोच्च परिषद् और शासी निकाय की देख रेख में है। सेंट स्टीफंस कॉलेज के प्रिंसिपल की नियुक्ति सर्वोच्च परिषद् द्वारा की जाती है और वह चर्च ऑफ नॉर्थ इंडिया से संबंधित

ईसाई होना चाहिए। याचिकाकर्ता के अनुसार, विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित योग्यता के अधीन प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए आज तक कॉलेज के संविधान का पालन किया गया है और विश्वविद्यालय द्वारा इस पर कभी आपत्ति नहीं की गई क्योंकि प्रिंसिपल के पद को भरने की प्रक्रिया से निपटने वाला विश्वविद्यालय अध्यादेश अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान पर लागू नहीं होता है। हालांकि, अब विश्वविद्यालय याचिकाकर्ता पर प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए विश्वविद्यालय अध्यादेश का पालन करने का आग्रह कर रहा है। इसलिए, याचिकाकर्ता ने दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII के खंड 7(2) को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान पर लागू नहीं करने की घोषणा करने के लिए इस न्यायालय का दरवाजा खटखटाया है।

5. विवाद को समझने के लिए कुछ और तथ्य बताए जाने चाहिए। जनवरी 2007 में हिमाचल विश्वविद्यालय के कुलपति के रूप में डॉ. अनिल विल्सन की नियुक्ति के परिणामस्वरूप सेंट स्टीफंस कॉलेज के प्रिंसिपल का पद रिक्त हो गया था। इसलिए इस रिक्ति को भरने के लिए उच्चतम परिषद ने दिनांक 23 मार्च, 2007 को प्रिंसिपल के पद के लिए विज्ञापन दिया। सात आवेदन प्राप्त हुए और दिनांक 9 मई, 2007 को आवेदकों का साक्षात्कार लिया गया, लेकिन प्रिंसिपल के रूप में नियुक्ति के लिए कोई भी उपयुक्त नहीं पाया गया। इसलिए सेंट स्टीफंस कॉलेज के अंग्रेजी विभाग के पूर्व प्रमुख रेवरेंड फादर वाल्सन थम्पू को विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII के खंड 3 (ग) द्वारा

अनुमत कॉलेज में विशेष कार्य अधिकारी (ओएसडी) के रूप में सेवा करने के लिए आमंत्रित किया गया था। ओएसडी के रूप में रेवरेंड फादर वाल्सन थम्पू की नियुक्ति को अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के राष्ट्रीय आयोग के समक्ष चुनौती दी गई थी। आयोग ने दिनांक 5 फरवरी, 2007 के अपने आदेश के माध्यम से घोषित किया कि रेवरेंड फादर वाल्सन थम्पू की नियुक्ति अवैध और निष्क्रिय है। आयोग ने कॉलेज को कानून के अनुसार कॉलेज के लिए नियमित प्रिंसिपल के चयन और नियुक्ति के लिए तत्काल सुधारात्मक उपाय करने की भी सिफारिश की। अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों के राष्ट्रीय आयोग द्वारा पारित आदेश को याचिकाकर्ता ने इस न्यायालय के समक्ष चुनौती दी और मामले में प्रत्यर्पण को नोटिस जारी किया गया। हालांकि, फादर वाल्सन थम्पू ने ओएसडी के पद से इस्तीफा दे दिया और इसे 15 मार्च, 2008 को उच्चतम परिषद द्वारा स्वीकार कर लिया गया। याचिकाकर्ता ने कॉलेज के संविधान के अनुसार प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए फिर से प्रक्रिया शुरू की और प्रिंसिपल के पद के लिए आवेदन आमंत्रित करते हुए समाचार पत्रों में एक विज्ञापन भी जारी किया गया। विज्ञापन में प्रावधान है कि उम्मीदवार को ऊपर संदर्भित विश्वविद्यालय अध्यादेश के तहत निर्धारित आवश्यक योग्यताएं पूरी करनी चाहिए। हालांकि विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता को दिनांक 20 मार्च, 2008 के संचार के माध्यम से कॉलेजों के प्रिंसिपलों की नियुक्ति के लिए यूजीसी के मानदंडों का अक्षरशः पालन करने का निर्देश दिया, जिसमें निर्धारित न्यूनतम योग्यताएं और चयन समिति और चयन प्रक्रिया दोनों शामिल हैं।

प्रथम प्रत्यर्थी ने याचिकाकर्ता को यह भी निर्देश दिया कि वह विज्ञापन में निर्धारित किसी भी न्यूनतम आयु मानदंड पर जोर न दे क्योंकि विश्वविद्यालय अध्यादेश में इसका प्रावधान नहीं है। दिनांक 27 मार्च, 2008 को एक और संचार के माध्यम से दिल्ली विश्वविद्यालय ने याचिकाकर्ता को फिर से प्रिंसिपल पद के लिए चयन समिति की संरचना का पालन करने के लिए जोर दिया, जैसा कि अध्यादेश XVIII के खंड 7 में संदर्भित है।

6. दिल्ली विश्वविद्यालय का अध्यादेश XXIV प्रिंसिपल के पद के लिए योग्यता से संबंधित है। याचिकाकर्ता द्वारा दिए गए विज्ञापन में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि केवल वही उम्मीदवार प्रिंसिपल के पद के लिए आवेदन करने के पात्र होंगे जो अध्यादेश XXIV में निर्धारित योग्यताएं पूरी करते हैं। विवाद अध्यादेश XVIII के खंड 7(2) की प्रयोज्यता के संबंध में है। अध्यादेश XVIII के खंड 7(2) के अनुसार कॉलेज शासी निकाय को प्रिंसिपल पद के लिए आवेदकों की सूची के साथ-साथ अन्य जिन पर शासी निकाय प्रिंसिपल पद के लिए विचार करने का प्रस्ताव करती है, उन्हें विश्वविद्यालय द्वारा निर्धारित फॉर्म में अग्रेषित करने की आवश्यकता होती है। शासी निकाय द्वारा प्रस्तुत उपरोक्त सूची की प्रारंभिक चयन समिति द्वारा जांच की जाती है। इसके बाद प्रारंभिक चयन समिति की संस्तुति विश्वविद्यालय को भेजनी होगी और संस्तुति प्राप्त होने पर विश्वविद्यालय या तो वरीयता क्रम में उल्लिखित नामों का अपना पैनल शासी निकाय को भेज सकता है, जिन्हें विश्वविद्यालय

प्रिंसिपल के रूप में मान्यता देने के लिए तैयार है या यदि विश्वविद्यालय के अनुसार कोई भी आवेदक पद के लिए उपयुक्त नहीं पाया जाता है तो ऐसी कोई सूची भेजने से परहेज कर सकता है। यदि विश्वविद्यालय प्रिंसिपल के पद के लिए नामों का अपना पैनल नहीं भेजता है, तो कॉलेज के पास पद को फिर से विज्ञापित करने के अलावा कोई अन्य विकल्प नहीं है।

7. विश्वविद्यालय को चयन के विभिन्न चरणों में वीटो की शक्ति दी गई है। अध्यादेश के खंड 7 (2) में दिल्ली विश्वविद्यालय से संबद्ध कॉलेज के प्रिंसिपल की नियुक्ति के उद्देश्य से दो समितियों पर विचार किया गया है, अर्थात् (i) प्रारंभिक चयन समिति और (ii) कॉलेज के प्रिंसिपल की नियुक्ति के लिए अंतिम चयन समिति। प्रारंभिक चयन समिति में (i) कुलपति; (ii) उप-कुलपति; (iii) आगंतुक का एक नामित सदस्य; (iv) महाविद्यालय के शासी निकाय का अध्यक्ष और (v) उसके द्वारा नामित कार्यकारी परिषद के दो सदस्य शामिल होते हैं। इस प्रकार, प्रारंभिक चयन समिति के गठन में, प्रबंधन में केवल एक प्रतिनिधि होता है और विश्वविद्यालय में पाँच नामांकित व्यक्ति होते हैं। इसके अलावा, प्रारंभिक चयन समिति द्वारा की गई कोई भी सिफारिश विश्वविद्यालय के लिए बाध्यकारी नहीं है। यदि किसी कारण से प्रारंभिक चयन समिति द्वारा की गई सिफारिश विश्वविद्यालय को स्वीकार्य नहीं है, तो विश्वविद्यालय के लिए यह विकल्प खुला है कि वह वरीयता क्रम में उल्लिखित उन व्यक्तियों की सूची भेजे, जिन्हें विश्वविद्यालय प्रिंसिपल के रूप में मान्यता

देने के लिए तैयार हो, या यदि विश्वविद्यालय को लगता है कि आवेदकों में से कोई भी प्रिंसिपल के पद के लिए उपयुक्त नहीं है, तो वह सूची भेजने से परहेज कर सकता है। विश्वविद्यालय द्वारा चुने गए उम्मीदवारों में से किसी एक का चयन करने के अलावा अंतिम चयन समिति की व्यावहारिक रूप से कोई भूमिका नहीं है। याचिकाकर्ता का तर्क है कि खंड 7 (2) के अनुसार, चयन की पूरी प्रक्रिया विश्वविद्यालय द्वारा ली जाती है और शासी निकाय के पास विश्वविद्यालय को आवेदकों की सूची भेजने और उसके बाद विश्वविद्यालय द्वारा चुने गए व्यक्ति की नियुक्ति करने के अलावा कुछ नहीं है।

8. याचिकाकर्ता की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता श्री रोमी चाको ने तर्क दिया कि प्रिंसिपल की नियुक्ति का अधिकार संविधान के अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यकों के प्रशासन के अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। उन्होंने कहा कि अल्पसंख्यक संस्थान द्वारा सहायता प्राप्त करना किसी भी तरह से शैक्षणिक संस्थानों को संचालित करने के इस संवैधानिक अधिकार को बाधित या कम नहीं करता है और इसलिए, अध्यादेश XVIII के खंड 7(2) में अल्पसंख्यक कॉलेज को चयन समिति प्रक्रिया का पालन करने की आवश्यकता संविधान के अनुच्छेद 30(1) का उल्लंघन है। उन्होंने आगे कहा कि राज्य या विश्वविद्यालय प्रिंसिपल की नियुक्ति के लिए विधि या प्रक्रिया को विनियमित नहीं कर सकते हैं और उनके पास निहित सीमित शक्ति प्रिंसिपल के पद के लिए योग्यता निर्धारित करना है। उन्होंने कहा कि यह प्रश्न कि क्या सहायता

प्राप्त अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थानों को *टीएमए पाई फाउंडेशन बनाम कर्नाटक राज्य* (2002) 8 एससीसी 481 के निर्णय के बाद भी कॉलेज के प्रिंसिपल की नियुक्ति का अधिकार प्राप्त है, *सचिव मलंकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज बनाम टी. जोस व अन्य* (2007) 1 एससीसी 386 में अंतिम रूप से सुलझा लिया गया है, जिसमें *टीएमए पाई फाउंडेशन* मामले का संदर्भ देने के बाद यह माना गया है कि राज्य सहायता प्राप्त करने से अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यकों को गारंटीकृत अधिकार समाप्त नहीं होता है।

9. दूसरी ओर, दिल्ली विश्वविद्यालय की ओर से पेश विद्वान अधिवक्ता सुश्री मनिंदर आचार्य का तर्क है कि अनुच्छेद 30(1) के तहत अल्पसंख्यकों को अपने शैक्षणिक संस्थानों को प्रशासित करने और प्रबंधित करने का कोई अप्रतिबंधित अधिकार नहीं है; विश्वविद्यालय अल्पसंख्यकों द्वारा संचालित निजी शैक्षणिक संस्थानों के प्रशासन के कुछ पहलुओं को विनियमित कर सकता है, विशेष रूप से प्रिंसिपल के रूप में नियुक्त होने के लिए न्यूनतम योग्यता, अनुभव और योग्यता से संबंधित अन्य शर्तें निर्धारित करके और इसलिए विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII का खंड 7 प्रिंसिपल के पद को भरने के तरीके के बारे में बताता है जो राज्य से सहायता प्राप्त करने वाले अल्पसंख्यक संस्थानों के लिए बाध्यकारी है। वह प्रस्तुत करती है कि खंड 7(2) द्वारा लगाई गई शर्त को संस्थान के अपने मामलों को प्रशासित करने के अधिकार में हस्तक्षेप के रूप में नहीं समझा जा सकता है। चूंकि संस्थान विश्वविद्यालय से

संबद्ध है, इसलिए इसे किसी अन्य समान संस्थान की तरह आवश्यकताओं का अनुपालन करना आवश्यक है, और अध्यादेश के इस खंड के आवेदन में कोई भेदभाव नहीं था और इसके अलावा उद्देश्य चयन प्रक्रिया में पारदर्शिता और निष्पक्षता सुनिश्चित करना था और इसे संस्थान के मामलों में हस्तक्षेप नहीं कहा जा सकता है। विद्वान अधिवक्ता ने *टीएमए पाई फाउंडेशन (पूर्वोक्त)* में उच्चतम न्यायालय के निर्णय पर बहुत भरोसा किया है।

10. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग की ओर से उपस्थित विद्वान अधिवक्ता श्री अमितेश कुमार ने विश्वविद्यालय के विद्वान अधिवक्ता की दलीलों का कमोबेश समर्थन किया है।

11. हमें जिस प्रश्न पर विचार करना है वह यह है कि क्या अल्पसंख्यक कॉलेज का प्रबंधन दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII के खंड 7 से भी बंधा है और इसलिए कॉलेज को प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए उसमें निर्धारित प्रक्रिया का पालन करना आवश्यक है। उच्चतम न्यायालय के सात न्यायाधीशों की एक संविधान पीठ ने भारत के राष्ट्रपति के संदर्भ में, *केरल शिक्षा विधेयक 1957*, एआईआर 1958 एससी 956 में विधेयक की संवैधानिक वैधता की जांच की। उक्त निर्णय में संविधान पीठ द्वारा निर्धारित प्रस्तावों में से एक यह है कि अनुच्छेद 30(1) के तहत गारंटीकृत अधिकार एक ऐसा अधिकार है जो कानून में निरपेक्ष है और कोई भी कानून या कार्यकारी निर्देश जो उस अधिकार के सार का उल्लंघन करता है, उल्लंघन की सीमा तक शून्य

है। लेकिन अधिकार का पूर्ण चरित्र दक्षता या निर्देश, अनुशासन, स्वास्थ्य, स्वच्छता, नैतिकता, सार्वजनिक व्यवस्था और इसी तरह के सच्चे हित में नियम बनाने से नहीं रोकेगा, क्योंकि ऐसे नियम संविधान द्वारा गारंटीकृत अधिकार के सार पर प्रतिबंध नहीं हैं।

12. उपरोक्त प्रस्ताव को *सिद्धराजभाई सब्बई* बनाम *गुजरात राज्य* एआईआर 1963 एससी 540 मामले में उच्चतम न्यायालय की एक अन्य संविधान पीठ और *अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी* बनाम *गुजरात राज्य* (1974) 1 एससीसी 717 मामले में उच्चतम न्यायालय की नौ न्यायाधीशों की पीठ ने भी मंजूरी दे दी थी।

13. कॉलेज या स्कूल में प्रिंसिपल या हेड मास्टर द्वारा निभाई जाने वाली मुख्य भूमिका के महत्व को *एन. अम्माद* बनाम *मैनेजर, एमजे हाई स्कूल और अन्य* (1998) 6 एससीसी 674 में निम्नलिखित शब्दों में दो न्यायाधीशों की पीठ के निर्णय में स्पष्ट रूप से बताया गया है: (एआईआर पी-680 पैरा 18)

“किसी स्कूल में प्रधानाध्यापक (या कॉलेज के प्रिंसिपल) का चयन और नियुक्ति उस शैक्षणिक संस्थान के प्रशासन में सबसे महत्वपूर्ण है। स्कूल के संचालन में प्रधानाध्यापक का पद सबसे महत्वपूर्ण होता है। प्रधानाध्यापक वह केंद्र होता है जिस पर स्कूल की सारी धुरी घूमती है और जिसके इर्द-गिर्द घूमकर परिणाम मिलते हैं। स्कूल के व्यक्तित्व की पहचान उसके प्रधानाध्यापक के माध्यम से होती है और वह एक ऐसा केंद्र बिंदु होता है जिसके माध्यम से बाहरी लोग स्कूल के प्रति अपना

नजरिया बनाते हैं। एक खराब प्रधानाध्यापक पूरे संस्थान को खराब कर सकता है, एक कुशल और ईमानदार प्रधानाध्यापक इसे कई गुना बेहतर बना सकता है। किसी स्कूल की कार्यात्मक प्रभावशीलता उसके प्रधानाध्यापक की दक्षता और समर्पण पर बहुत अधिक निर्भर करती है। पिछले कई वर्षों में शिक्षा के संरचनात्मक पैटर्न में हुए कई बदलावों के बावजूद यह प्राचीन सिद्धांत अपरिवर्तित बना हुआ है।”

न्यायालय ने *एल्डो मारिया पैटोनी बनाम ई.सी. केसवन*, एआईआर 1965 केरल 75 में केरल उच्च न्यायालय की पूर्ण पीठ के निर्णय में मुख्य न्यायाधीश एम.एस.मेनन की निम्नलिखित टिप्पणियों को अनुमोदन के साथ उद्धृत किया: (एआईआर पृष्ठ 680 पैरा 19)

“स्कूल के जीवन में प्रधानाध्यापक का पद महत्वपूर्ण होता है। उसके इर्द-गिर्द संस्था का स्वर और स्वभाव घूमता है; उस पर उसकी परंपराओं की निरंतरता, अनुशासन का रखरखाव और उसके शिक्षण की दक्षता निर्भर करती है। प्रधानाध्यापक चुनने का अधिकार शायद स्कूल को संचालित करने के अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है, और हमें यह मानना चाहिए कि इस पर किसी भी तरह का प्रतिबंध लगाना - अपेक्षित योग्यता और अनुभव निर्धारित करने की सीमा को छोड़कर - संविधान के अनुच्छेद 30(1) द्वारा गारंटीकृत अधिकार का उल्लंघन माना जाना चाहिए। अन्यथा अधिकार को धारण करना 'एक छलावा भरा भ्रम, अवास्तविकता का वादा' बनाना होगा।

14. *अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी* के मामले (पूर्वोक्त) में नौ न्यायाधीशों की पीठ ने भी कॉलेज के प्रिंसिपल की भूमिका के महत्व पर प्रकाश

डाला। उस निर्णय में, पैराग्राफ 182 में, न्यायमूर्ति के.के. मैथ्यू ने इस प्रकार टिप्पणी की: (एससीसी पृष्ठ 815-16 पैरा 182)

"एक कॉलेज के प्रिंसिपल और शिक्षकों पर ही शिक्षण संस्थान का स्वरूप और स्वभाव निर्भर करता है। उन पर ही इसकी प्रतिष्ठा, अनुशासन का रखरखाव और शिक्षण में इसकी दक्षता निर्भर करती है। प्रिंसिपल को चुनने का अधिकार और उनके दृष्टिकोण और दर्शन के समग्र मूल्यांकन के बाद प्रबंधन द्वारा नियुक्त शिक्षकों द्वारा शिक्षण संचालित करने का अधिकार शायद एक शैक्षणिक संस्थान को प्रशासित करने के अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है।"

15. न्या. कृष्ण अय्यर ने *गांधी फैज़-ए-एम कॉलेज बनाम आगरा विश्वविद्यालय* (1975) 2 एस.सी.सी. 283 में बहुमत के दृष्टिकोण से असहमति जताते हुए फिर भी निम्नलिखित शब्दों में प्राचार्य पद के महत्व पर जोर दिया है:(एस. सी. सी. पी. 293 पैरा 21)

"21. एक सक्रिय प्रिंसिपल इन कर्तव्यों का निर्वहन करने में एक परिसंपत्ति है जो शैक्षणिक कार्यों के साथ अभिन्न रूप से जुड़े हुए हैं। प्रिंसिपल एक अमूल्य अंदरूनी व्यक्ति है - प्रबंधन की अपनी पसंद - कुलपति के प्रति जवाबदेह के लिए विश्वशनीय व्यक्ति। वह प्रबंध समिति के काम में शैक्षिक संचालन के साथ घनिष्ठ परिचय और छात्र-शिक्षक आकांक्षाओं और शिकायतों की आवश्यक अभिव्यक्ति लाता है जो अल्पसंख्यक संस्थान के लिए व्यक्तित्व और उत्कृष्टता के बीच एक सुखद सम्बन्ध प्राप्त करने के लिए बहुत आवश्यक हैं।

16. **केरल राज्य बनाम वेरी रेवरेंड मदर प्रोविंशियल** (1970) 2 एससी 417

मामले में उच्चतम न्यायालय ने केरल उच्च न्यायालय के उस निर्णय को बरकरार रखा, जिसमें अल्पसंख्यक संस्थानों के संबंध में प्रिंसिपल की नियुक्ति से संबंधित केरल विश्वविद्यालय अधिनियम, 1969 की धारा 53 की उप-धारा (1), (2), (3) को अनुच्छेद 30(1) के दायरे से बाहर घोषित किया गया था। न्यायालय ने उच्च न्यायालय के निम्नलिखित निष्कर्षों की पुष्टि की (1969 केरल लॉ टाइम्स 749 में रिपोर्ट की गई):

“अनुच्छेद 2(12) के अनुसार, कॉलेज का प्रिंसिपल कॉलेज का प्रमुख होता है और कॉलेज के जीवन में प्रिंसिपल का पद महत्वपूर्ण होता है; उसके इर्द-गिर्द संस्था का स्वर और स्वभाव घूमता है; उस पर उसकी परंपराओं की निरंतरता, अनुशासन का रखरखाव और उसके शिक्षण की दक्षता निर्भर करती है; और प्रिंसिपल को चुनने का अधिकार शायद कॉलेज को संचालित करने के अधिकार का सबसे महत्वपूर्ण पहलू है। अपेक्षित योग्यता और अनुभव निर्धारित करने या संस्था के हितों को बढ़ावा देने की सीमा को छोड़कर उस पर कोई भी रोक लगाना संविधान के अनुच्छेद 30(1) और, जैसा कि हमने पहले ही बताया है, अनुच्छेद 19(1)(च) द्वारा गारंटीकृत अधिकार का उल्लंघन माना जा सकता है। अन्यथा मानना अधिकारों को “एक छलावा भ्रम, अवास्तविकता का वादा” बनाना होगा। बेशक, यह सुनिश्चित करने के लिए प्रावधान किया जा सकता है कि प्रिंसिपल के पद पर केवल उचित व्यक्तियों की नियुक्ति की जाए; आवश्यक योग्यताएँ निर्धारित की जा सकती हैं और सर्वश्रेष्ठ व्यक्तियों को प्राप्त करने के उद्देश्य से चयन का तरीका निर्धारित किया जा सकता है। लेकिन उससे आगे जाकर

चयन पर कोई और प्रतिबंध लगाना प्रबंधन के अधिकार में अनुचित हस्तक्षेप होगा। इसलिए, जहाँ तक प्रिंसिपल के पद का सवाल है, हमें लगता है कि उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ व्यक्ति की सेवाएँ प्राप्त करने का काम प्रबंधन पर छोड़ देना चाहिए। हमें लगता है कि यह सबसे महत्वपूर्ण है और कर्मचारियों की उन्नति की संभावनाओं को इसके लिए स्वीकार किया जाना चाहिए। प्रबंधन के पास यथासंभव विकल्प का विस्तृत क्षेत्र होना चाहिए; फिर भी धारा 53 की उप-धारा (2) कॉलेजों या सभी कॉलेजों के शिक्षकों तक ही विकल्प को सीमित करती है, और किसी बाहरी व्यक्ति की नियुक्ति केवल तभी संभव बनाती है जब ऐसे कॉलेज या कॉलेजों में कोई उपयुक्त व्यक्ति न हो। इससे पद को नीरस और सामान्य स्तर पर ले जाने का परिणाम हो सकता है। एक प्रावधान जिसके तहत किसी बाहरी व्यक्ति की नियुक्ति की जाए या किसी जूनियर कर्मचारी को वरिष्ठ सदस्य की तुलना में तभी वरीयता दी जाए जब वह बेहतर योग्यता वाला हो, जिसका मूल्यांकन मुख्य रूप से प्रबंधन पर छोड़ दिया जाना चाहिए, समझ में आता है; लेकिन एक प्रावधान जो प्रबंधन को कॉलेज (या कॉलेजों) के केवल एक शिक्षक को नियुक्त करने के लिए बाध्य करता है जब तक कि वह सभी शिक्षकों को अनुपयुक्त घोषित न कर दे, स्पष्ट रूप से प्रबंधन की शक्तियों का हनन है और संस्थान के हित को आगे बढ़ाने के लिए गणना नहीं की गई है। लेकिन हम यह कह सकते हैं कि प्रिंसिपल की नियुक्ति पर कोई आपत्ति नहीं हो सकती है, जैसे कि स्टाफ के किसी अन्य सदस्य की नियुक्ति विश्वविद्यालय के किसी प्राधिकारी के अनुमोदन के अधीन है, जब तक कि अस्वीकृति केवल इस आधार पर हो सकती है कि नियुक्त व्यक्ति के पास अपेक्षित योग्यताएं नहीं हैं। इसके अलावा, यदि अस्वीकृति केवल कुछ ऐसे बताए गए आधार पर नहीं है, बल्कि पूरी तरह से नियुक्ति प्राधिकारी की इच्छा और खुशी पर छोड़ दी गई है, तो यह

शैक्षिक एजेंसी को उसकी नियुक्ति की शक्ति से वंचित करना होगा और अनुच्छेद 19 (1) (च) और अनुच्छेद 30 (1) का उल्लंघन होगा।

17. **एन. अम्माद के मामले** (पूर्वोक्त) में न्यायालय ने स्पष्ट रूप से कहा कि यदि विद्यालय के प्रबंधन को ऐसे महत्वपूर्ण पद के लिए कर्मियों को चुनने की बहुत व्यापक स्वतंत्रता नहीं दी जाती है, तो निश्चित रूप से राज्य द्वारा निर्धारित योग्यता संबंधी प्रतिबंधों के अधीन, विद्यालय को संचालित करने का अधिकार बहुत कम हो जाएगा। न्यायालय ने इस दलील को भी खारिज कर दिया कि प्रबंधन को योग्य व्यक्तियों से आवेदन आमंत्रित करते हुए पद के लिए विज्ञापन देना चाहिए था। न्यायालय ने **शाइन्दा हसन बनाम उत्तर प्रदेश राज्य** (1990) 3 एससीसी 48 के निर्णय से अलग यह देखते हुए कि उस मामले में कोई कानूनी प्रस्ताव नहीं रखा गया है कि चयन प्रक्रिया विज्ञापन के माध्यम से होनी चाहिए। नियुक्ति के लिए योग्य व्यक्तियों के चयन के तौर-तरीकों का चयन करना अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन का काम है।

18. **माध्यमिक शिक्षा और शिक्षक प्रशिक्षण बोर्ड बनाम संयुक्त निदेशक लोक निर्देश, सागर और अन्य** (1998) 8 एससीसी 555 मामले में न्यायालय ने यह स्पष्ट कर दिया कि नियुक्ति के लिए योग्यता और पात्रता निर्धारित करने के अलावा किसी भी नियम या विनियम या राज्य द्वारा बनाए गए किसी भी अधिनियम द्वारा अल्पसंख्यक संस्थानों का अधिकार नहीं छीना जा सकता

है। उक्त निर्णय का पैराग्राफ 3, जो महत्वपूर्ण है, नीचे उद्धृत किया गया है:

(एससीसी पृष्ठ 556)

"3. इस न्यायालय के निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि प्रिंसिपल की नियुक्ति के मामले में अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान के प्रबंधन के पास विकल्प होता है। यह माना गया है कि अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान को संचालित करने के अधिकार की घटनाओं में से एक प्रिंसिपल का चयन है। कोई भी नियम जो प्रबंधन के इस अधिकार को छीनता है, उसे संविधान के अनुच्छेद 30 द्वारा गारंटीकृत अधिकार में हस्तक्षेप करने वाला माना गया है। इस मामले में, प्रबंधन द्वारा चुने गए जूलियस प्रसाद और तीसरा प्रत्यर्थी दोनों ही नियमों के अनुसार प्रिंसिपल के रूप में नियुक्ति के लिए योग्य और पात्र हैं। सवाल यह है कि क्या प्रबंधन को अपनी पसंद के व्यक्ति को चुनने का अधिकार नहीं है। केरल राज्य बनाम वेरी रेवरेंड मदर प्रोविंशियल और अहमदाबाद सेंट जेवियर्स कॉलेज सोसाइटी बनाम गुजरात राज्य के निर्णय सहित इस न्यायालय के निर्णयों से यह स्पष्ट होता है कि अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थान के इस अधिकार को किसी भी नियम या विनियमन या राज्य द्वारा बनाए गए किसी भी अधिनियम द्वारा नहीं छीना जा सकता है। इसलिए, हमारा मानना है कि उच्च न्यायालय द्वारा अन्यथा निर्णय लेना सही नहीं था। राज्य के पास निस्संदेह अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों के मामलों को अनुशासन और उत्कृष्टता के हित में विनियमित करने की शक्ति है। लेकिन उस प्रक्रिया में, प्रबंधन के उपरोक्त अधिकार को नहीं छीना जा सकता, भले ही सरकार सौ प्रतिशत अनुदान दे रही हो। हमें इस अपील में किसी अन्य प्रश्न पर जाने की आवश्यकता नहीं है।"

19. हाल ही में *सचिव मलंकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज* (पूर्वोक्त) के मामले में लिए गए निर्णय में केरल विश्वविद्यालय अधिनियम, 1974 की धारा 57 (3) को उच्चतम न्यायालय के विचारार्थ भेजा गया। धारा 57(3) में प्रावधान है कि जब प्रिंसिपल का पद पदोन्नति द्वारा भरा जाता है तो उसे वरिष्ठता-सह-योग्यता के आधार पर भरा जाना चाहिए। उच्च न्यायालय ने *टीएमए पाई फाउंडेशन* के निर्णय पर भरोसा करते हुए कहा कि अल्पसंख्यक संस्थान द्वारा सहायता प्राप्त करने से अनुच्छेद 30(1) के तहत सुरक्षा समाप्त हो जाती है, क्योंकि इससे हस्तक्षेप से उन्मुक्ति का दावा करने का उसका अधिकार समाप्त हो जाता है और इसलिए राज्य द्वारा नियुक्तियों और हटाने के तरीके को नियंत्रित करने वाले सभी नियम, साथ ही प्रिंसिपल और लेक्चरर की सेवा की शर्तें, ऐसे सहायता प्राप्त संस्थान पर बाध्यकारी होंगी। उच्च न्यायालय ने माना कि सहायता के लिए प्रशासन के मामलों में अपनी स्वतंत्रता और स्वायत्तता के एक हिस्से को त्यागने की 'कीमत' चुकानी पड़ती है। परिणामस्वरूप, इसने माना कि अधिनियम की धारा 57(3) जो यह प्रावधान करती है कि प्रिंसिपल की नियुक्तियाँ वरिष्ठता-सह-योग्यता के आधार पर होनी चाहिए, अल्पसंख्यक संस्थानों पर वैध और बाध्यकारी है। न्यायालय ने विचार के लिए निम्नलिखित दो प्रश्न तैयार किए:

“(i) जब ऐसे संस्थान राज्य से सहायता प्राप्त करते हैं, तो राज्य अल्पसंख्यकों के अपने शैक्षणिक संस्थानों का प्रशासन करने के अधिकार को किस हद तक विनियमित कर सकता है?

(ii) क्या प्रधानाचार्य चुनने का अधिकार अनुच्छेद 30 (1) के तहत अल्पसंख्यकों के अपनी पसंद के शैक्षणिक संस्थानों की स्थापना और प्रशासन के अधिकार का हिस्सा है। यदि ऐसा है, तो अधिनियम की धारा 57 (3) भारत के संविधान के अनुच्छेद 30 (1) का उल्लंघन करेगी।”

20. प्रश्न सं. 1 के संबंध में न्यायालय ने **केरल राज्य बनाम वेरी रेवरेंड मदर प्रोविंशियल** से लेकर **टीएमए पाई फाउंडेशन** तक के विभिन्न निर्णयों का आलोचनात्मक विश्लेषण करने के बाद यह माना कि शैक्षणिक संस्थाओं के प्रशासन और सहायता अनुदान को विनियमित करने के लिए राज्य द्वारा बनाए गए सभी कानून अल्पसंख्यक शैक्षणिक संस्थाओं पर भी लागू होंगे और यदि ऐसा कोई विनियमन कर्मचारियों पर प्रबंधन के समग्र प्रशासनिक नियंत्रण में हस्तक्षेप करता है या किसी अन्य तरीके से शैक्षणिक संस्थाओं की स्थापना और प्रशासन के अधिकार को कम करता/कमजोर करता है, तो ऐसे विनियमन, उस सीमा तक, अल्पसंख्यक संस्थाओं पर लागू नहीं होंगे।

21. जहां तक प्रिंसिपल या हेडमास्टर की नियुक्ति के मामले में सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थानों के अधिकार से संबंधित प्रश्न का संबंध है, न्यायालय ने **एन. अम्माद, बोर्ड ऑफ सेकेंडरी एजुकेशन एंड टीचर्स ट्रेनिंग** और **केरल राज्य बनाम वेरी रेवरेंड मदर प्रोविंशियल** के निर्णयों को विस्तार से उद्धृत करने के बाद निम्नलिखित निर्णय दिया: (एससीसी पृष्ठ 404)

"27. इस प्रकार यह स्पष्ट है कि प्राचार्य के रूप में नियुक्त किए जाने वाले व्यक्ति को चुनने की स्वतंत्रता को हमेशा शैक्षणिक संस्थान के प्रशासन के अधिकार के एक महत्वपूर्ण पहलू के रूप में मान्यता दी गई है। इसे किसी भी तरह से टीएमए पाई द्वारा पतला या परिवर्तित नहीं किया गया है। शैक्षणिक संस्थान के प्रबंधन और प्रशासन में प्राचार्य द्वारा निभाई गई प्रमुख भूमिका को ध्यान में रखते हुए, इसमें कोई संदेह नहीं हो सकता है कि प्राचार्य चुनने का अधिकार प्रशासन के अधिकार का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है और भले ही संस्थान को सहायता प्रदान की जाए, उक्त अधिकार में कोई हस्तक्षेप नहीं हो सकता है। इस तथ्य से कोई फर्क नहीं पड़ेगा कि प्राचार्य/प्रधानाध्यापक का पद भी राज्य सहायता के दायरे में आता है।

28. अपीलार्थी का तर्क है कि अनुच्छेद 30 (1) द्वारा दिए गए संरक्षण का उपयोग शिक्षण कर्मचारियों के किसी सदस्य के खिलाफ नहीं किया जा सकता है जो एक ही अल्पसंख्यक समुदाय से संबंधित है। यह तर्क दिया जाता है कि एक अल्पसंख्यक संस्थान एक ही समुदाय से संबंधित योग्य व्याख्याताओं के अधिकारों की अनदेखी नहीं कर सकता है, जो चुने जाने के लिए प्रस्तावित व्यक्ति से वरिष्ठ हैं, केवल इसलिए कि संस्थान को अपनी पसंद के प्राचार्य का चयन करने का अधिकार है। लेकिन यह विवाद इस स्थिति की अनदेखी करता है कि अल्पसंख्यक समुदाय का अपनी पसंद के प्राचार्य का चयन करने का अधिकार व्यक्ति के दृष्टिकोण और दर्शन और अपने उद्देश्यों को लागू करने की योग्यता के मूल्यांकन के संदर्भ में है। प्रबंधन को उस व्यक्ति को नियुक्त करने का अधिकार है, जो उनके अनुसार संस्थान का नेतृत्व करने के लिए सबसे उपयुक्त है, बशर्ते उसके पास पदों के लिए निर्धारित योग्यताएं हों। शिक्षण कर्मचारियों, यहां तक कि एक ही समुदाय से संबंधित लोगों की कैरियर उन्नति की संभावनाओं को शैक्षणिक संस्थानों की

स्थापना और प्रशासन के लिए अनुच्छेद 30 (1) के तहत प्रबंधन के अधिकार के आगे झुकना होगा।“

22. निर्णीत मामलों को ध्यान में रखते हुए यह स्पष्ट है कि अल्पसंख्यक शिक्षण संस्थानों का संस्था प्रमुख नियुक्त करने का अधिकार किसी नियम या विनियमन या राज्य द्वारा बनाए गए किसी अधिनियम द्वारा नहीं छीना जा सकता, भले ही संस्था को 100% सहायता प्राप्त हो रही हो। ऐसा कानून जो अल्पसंख्यकों की प्रिंसिपल की पसंद में हस्तक्षेप करता है, अनुच्छेद 30(1) का उल्लंघन होगा। *सचिव, मलंकारा सीरियन कैथोलिक कॉलेज* (पूर्वोक्त) में न्यायालय ने यह भी स्पष्ट किया कि टीएमए पाई फाउंडेशन के पैराग्राफ 72 और 73 को सहायता प्राप्त अल्पसंख्यक संस्थानों के संदर्भ में प्रस्तुत नहीं किया गया था और उक्त निर्णय के पैराग्राफ-80 से 155 में इस पर विचार किया गया था। न्यायालय ने प्रिंसिपल के पद के महत्व को भी मान्यता दी। इस प्रकार अल्पसंख्यक संस्थान ऐसे व्यक्ति को नियुक्त करने के हकदार हैं, जो उसके अनुसार, संस्था के प्रमुख के लिए सबसे उपयुक्त हो। अध्यादेश का खंड 7(2) जो किसी कॉलेज से अपना प्रिंसिपल चुनने का अधिकार वस्तुतः छीन लेता है, किसी अल्पसंख्यक प्रशासित संस्थान को बाध्य नहीं कर सकता।

23. इस स्तर पर यह ध्यान दिया जाना चाहिए कि याचिकाकर्ता अध्यादेश XVIII के खंड 24 को चुनौती नहीं देता है जो प्रिंसिपल के पद के लिए न्यूनतम योग्यता निर्धारित करता है। याचिकाकर्ता के विद्वान अधिवक्ता ने वास्तव में

कहा कि याचिकाकर्ता यह सुनिश्चित करेगा कि चयनित व्यक्ति के पास उसके तहत निर्धारित न्यूनतम योग्यता हो।

24. सुश्री मनिंदर आचार्य ने इस न्यायालय की खंडपीठ द्वारा **जीसस एंड मैरी कॉलेज बनाम दिल्ली विश्वविद्यालय और अन्य**. रि.या.(सि.) 5652/2006 में दिनांक 30 नवंबर, 2006 को लिए गए निर्णय का हवाला दिया है, जिसमें हम में से एक (न्या. डॉ. एस. मुरलीधर) एक पक्षकार हैं। यह निर्णय शिक्षकों की नियुक्ति से संबंधित दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII के खंड 7(4क) से संबंधित है। इस तथ्य के अलावा कि यह निर्णय शिक्षकों की नियुक्ति से संबंधित है न कि प्रिंसिपल की, उक्त निर्णय के पैराग्राफ 25 में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया गया है कि यह स्थापित कानून है कि अल्पसंख्यक संस्थान को राज्य द्वारा इस सीमा तक विनियमित नहीं किया जा सकता है कि यह प्रिंसिपल जैसे प्रमुख व्यक्ति को नियुक्त करने या सामान्य रूप से संस्थान का प्रशासन करने के अधिकार को पूरी तरह से छीन लेता है।

25. यूजीसी के विद्वान अधिवक्ता श्री अमितेश कुमार ने तर्क दिया कि यूजीसी द्वारा निर्धारित मानदंड फिर भी याचिकाकर्ता पर लागू होंगे। इस याचिका में इस तरह का सवाल विचारणीय नहीं है, और किसी भी स्थिति में ऐसा कोई भी मानदंड संविधान और कानून के प्रावधानों के अधीन होगा, जैसा कि उच्चतम न्यायालय ने अपने निर्णयों में स्पष्ट किया है।

26. परिणामस्वरूप, याचिका सफल हो जाती है। यह घोषित किया जाता है कि दिल्ली विश्वविद्यालय के अध्यादेश XVIII का खंड 7(2) याचिकाकर्ता पर लागू नहीं होता, जो एक अल्पसंख्यक संस्थान है। याचिकाकर्ता को जनवरी, 2007 से रिक्त प्रिंसिपल के पद को भरने के लिए चयन प्रक्रिया को आगे बढ़ाने और आज से आठ सप्ताह के भीतर प्रिंसिपल के पद को भरने का निर्देश दिया जाता है।

मुख्य न्यायाधीश

**एस.मुरलीधर
(न्यायाधीश)**

अगस्त 21, 2008

“वी ”

(Translation has been done through AI Tool: SUVAS)

अस्वीकरण : देशी भाषा में निर्णय का अनुवाद मुकद्दमेबाज़ के सीमित प्रयोग हेतु किया गया है ताकि वो अपनी भाषा में इसे समझ सकें एवं यह किसी अन्य प्रयोजन हेतु प्रयोग नहीं किया जाएगा। समस्त कार्यालयी एवं व्यावहारिक प्रयोजनों हेतु निर्णय का अंग्रेज़ी स्वरूप ही अभिप्रमाणित माना जाएगा और कार्यान्वयन तथा लागू किए जाने हेतु उसे ही वरीयता दी जाएगी।